Purva Mimaansa
A Multi-discipinary Bi-annual Research Journal
(Peer Reviewed, Refereed)

Vol. 10 No. 1-2, March-Sep. 2019
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903
Impact Factor 3.765

ऋषभदेवोपदिष्ट शिक्षा एवं कला–कौशल

डॉ0 अनुभा जैन

किसी भी देश की सभ्यता और संस्कृति को जीवित रखने के लिए शिक्षा की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका है, क्योंकि इसके द्वारा मनुश्य की भाक्तियों का विकास होता है, उसके ज्ञान में वृद्धि होती है, उसके व्यवहार में परिवर्तन आता है और इन सभी से उसके कला–कौशल में वृद्धि एवं परिवर्तन आता है। इस प्रकार शिक्षा मानव जीवन को भाुद्ध, परिश्कृत, संस्कारित एवं प्रज्ञावान् तो बनाती ही है साथ ही सम्पूर्ण समाज, राष्ट्र ही नहीं अपितु विश्व का अभ्युदय करके उसे उन्नत एवं विकसित भी करती है।

मनुश्य की स्थिति अन्य प्राणियों से सर्वथा भिन्न है। वह सामाजिक प्राणी है अतः उससे सभ्य एवं सुंसस्कृत आचरण की अपेक्षा की जाती है। व्यक्त्वि एवं ज्ञान सम्पदा की दृश्टि से उसे उपार्जन करने के योग्य बनने के लिए उसे विरासत में से कुछ संस्कार एवं ज्ञान को प्राप्त करना अत्यावयश्यक है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए भी प्राचीन काल से ही शिक्षा की व्यवस्था की जाती रही है। इस व्यवस्था का स्वरूप चाहे परिवर्तित होता रहा है, पर यह अनिवार्य रूप से सदैव प्रचलित रही है।

शिक्षा शब्द की व्युत्पत्ति, 'शिक्ष्' धातु से भाव अर्थ में 'अ' एवं स्त्रीत्वबोधक 'टाप्' प्रत्यय के संयोग से हुई है। 'शिक्ष्' धातु अध्ययन, अधिगम, विद्याभिग्रहण अर्थात् ज्ञानार्जन अर्थ में प्रयुक्त होती है। शिक्षा का वास्तविक अभिप्राय व्यक्ति के ज्ञान, रुचियों, आदर्शों और शक्तियों का विकास करना है। जिस का सदुपयोग करके मानव स्वयं को,समाज को तथा राष्ट्र को उच्च एवं पवित्र उद्देश्यों की ओर ले जाने में समर्थ होता है। अतः शिक्षा के द्वारा मनुष्य अपने आध्यात्मिक स्वभाव की सिद्धता को प्राप्त करता है।

शिक्षा का ध्येय व्यापक लोक कल्याण है जिससे व्यक्ति का उदात्तिकरण हो। यही कारण है कि प्राचीन काल में शिक्षा को षड्.वेदांगों में महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हुए इसे वेद रूपी पुरुष का घ्राण कहा गया है। 1 भारतीय मूल्यों में बाह्य की अपेक्षा आन्तरिक भाव का अधिक महत्त्व है। तभी सत्यं वद, धर्मम् चर जैसे नैतिक मूल्यों का उपदेश दिया गया है। संतुलन एवं समन्वय भारतीय मूल्यों की एक और विशेषता है, क्योंकि भारतीय समाज में विद्वान् से अधिक चरित्रवान का महत्त्व है।

शिक्षा के बिना मनुष्य का सर्वांगीण विकास सम्भव नहीं है। शिक्षा ही मानव को पशुत्व से ऊपर उठा कर मानवता की ओर अग्रसर करती है, आचार–व्यवहार तथा कला–कौशल का विकास करती है। तभी तो उपनिषदों में विद्या को मुक्ति का साधन बताया है।2 कला –कौशल तभी संभव है जब मनुष्य की समस्त शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास हो जो मात्र शिक्षा से ही सम्भव है। इसकी आवश्यकता और शाश्वत् उपयोगिता के सम्बन्ध में मनीषीगण शिक्षा को जीवन का शाश्वत्मूल्य स्वीकार करते हैं। मानवीय चेतना जिन दो प्रकार

गुरु नानक गर्ल्ज़ कॉलेज, यमुनानगर (हरियाणा)

Vol. 10 No. 1-2, March-Sep. 2019
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903
Impact Factor 3.765

के मूल्यों की परिधि में पल्लवित होती है उनमें कुछ शाश्वत् होते हैं और कुछ परिवर्तनशील। ज्ञान एवं शिक्षा की अनिवार्यता हर युग में रही है। इसलिए शिक्षा को हर युग में महत्त्व प्राप्त होता रहा है।

जैन– परम्परा में भी शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का चहुँमुखी विकास करना है, जिससे वह स्वयं परिष्कृत एवं समुन्नत हो कर समाज को भी सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करता है। अतः जैन दृष्टिकोण के अनुसार मनुष्य को भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के ज्ञान को आत्मसात् करना चाहिए। आचरण के नियमों के कारण जैन शिक्षा के वैसे केन्द्र नहीं बने जैसे वैदिक ऋषियों के आश्रम या बौद्धों के महाविहार अथवा विश्वविद्यालय होते थे। जहाँ कहीं भी जैन साधु मुनि का चातुर्मास होता था वे अस्थायी रूप से शिक्षा के केन्द्र बन जाते थे। ऐसे केन्द्रों में पाटलिपुत्र, मथुरा, श्रावस्ती, एलोरा, वलभी, राजगृह, गिरिनार, श्रवणबेलगोल, खंडगिरि, उदयगिरि आदि प्रमुख थे ।

मनुष्य के सम्यक् एवं सम्पूर्ण विकास के लिए मूल्यपरक शिक्षा की अनिवार्यता है। कला कौशल से मानव जीवन सुव्यवस्थित, उन्नत एवं सार्थक बनता है। ये मानव का मार्गदर्शन करके उसके जीवन को प्रशस्त करते हैं, उसे सम्बल प्रदान करते हैं तथा आत्मज्ञान से परिपूर्ण बनाते हैं। अतः मनुष्य किसी वस्तु, क्रिया, विचार को अपनाने से पूर्व यह निर्णय करता है कि वह किस क्षेत्र में अग्रसर हो ऐसा विचार व्यक्ति के मन में 'निर्णायक ढंग' से आता है, यही उसकी कुशलता है। कला– कौशल का सम्बन्ध सकारात्मक उपयोगिता, विशिष्टता एवं परिस्थितियों से होता है। कला–कौशल उन विचारों और परम्पराओं को सरंक्षण प्रदान करती है, जो सार्वभौमिक, सार्वकालिक एवं उपयोगी होती है।

शिक्षा के सम्बन्ध में जैन आम्नाय के आदि तीर्थङ्कर ऋषभदेव के जीवन वृत्त से अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य प्राप्त होते हैं। भगवान वृषभदेव ने कला और विद्या का उपदेश दिया।3 उनके मत में जीवन को सफल बनाने के लिए विद्या ग्रहण करना अत्यन्त आवश्यक है4 तभी उन्होंने अपनी दोनों पुत्रियों ब्राह्मी व सुन्दरी को विद्या का उपदेश दिया। उनके मत में पुरुष और स्त्री दोनों को ही समान रूप से शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए।5जैनागम में विद्या के महत्त्व को अंकित किया गया है तभी विद्या को यश प्रदायिनी, कल्याणकारिणी कहा गया है6 क्योंकि सम्यक् प्रकारेण प्राप्त की गई विद्या मनुष्य में कला–कौशलता का विकास करती है जिससे मनुष्य धन अर्जित करता है एवं इस प्रकार उसके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करती है।7 यही कारण है कि जैन साहित्य में शिक्षा को कामधेनु, चिन्तामणि, धर्म, अर्थ, काम रूप, फल से सहित सम्पदाओं की परम्परा उत्पन्न करने वाली कहा गया है।8. जैन– सम्प्रदाय में पूजनीय आदि तीर्थङ्कर को उस काल में भी यह भली–भांति ज्ञात था कि आपत्ति–विपत्ति काल में मात्र विद्या ही मनुष्य को उन परिस्थितियों से उभारने में सक्षम है, उसे आत्मनिर्भर बनाने में सक्षम है तभी उन्होनें विद्या को मनुष्यों का बन्धु, मित्र मानते हुए कहा है कि मृत्यु काल में मात्र मनुष्य के द्वारा प्राप्त विद्या ही उसके साथ जाने वाला वास्तविक धन है। अतः यही सब प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली है।9 स्पष्टतः जैनागम इस तथ्य का ज्वलन्त उदाहरण है कि जैन सम्प्रदाय में मात्र पुरूषों को ही नहीं अपितु स्त्रियों को भी शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था।

शिक्षा प्राप्त करने के लिए विनम्रता का गुण होना बहुत जरूरी है। विद्या ददाति विनयम् उक्ति को सार्थक करते हुए जैन– सम्प्रदाय में आदि तीर्थङ्कर वृषभदेव ने अपने पुत्रों को विनयी बनाकर क्रम से आम्नाय के अनुसार अनेक शास्त्रों की शिक्षा दी।10 जैनाचार्य यह सम्यक् प्रकार

Vol. 10 No. 1-2, March-Sep. 2019
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903
Impact Factor 3.765

जानते थे कि भाषा–ज्ञान के अतिरिक्त अन्य विषयों का ज्ञान भी मानव–जीवन के लिए नितान्त आवश्यक है तभी मानव अपने ज्ञान एवं कला को विकसित करके धनोपार्जन करने में सक्षम हो सकता है। इसी ध्येय से जैन–साहित्य में अर्थशास्त्र की शिक्षा का उपदेश दिया गया है।11

प्रत्येक मानव में कोई न कोई कला अवश्य निहित रहती है। तीर्थङ्.कर वृषभदेव यह सम्यक् रूप से जानते थे कि किसी भी क्षेत्र में निपुणता प्राप्त करने के लिए उस विषय अथवा कला की पूर्ण शिक्षा का ज्ञान होना चाहिए। तभी गीत–संगीत आदि अनेक पदार्थों के संग्रह 25 अर्थात् प्रकरणों से युक्त नृत्यशास्त्र की शिक्षा दी और 100 से अधिक अध्याय वाले गन्धर्व शास्त्र की शिक्षा दी।12

किसी भी काल के समाज में भिन्न–भिन्न प्रतिभा के लोग होते हैं। परन्तु वह समाज तभी विकसित हो पाता है जब विशेष विधा को जानने वाले लोग उस कार्य को पूर्ण प्रतिभा से करें, ताकि उसमें पूर्ण कुशलता हो। उनकी कला–कौशल में वृद्धि तभी सम्भव है जब मानव को उस विद्या की पूर्ण शिक्षा प्राप्त हो। लोगों में गृह–निर्माण की कला को विकसित करने के लिए जैन–आम्नाय में इस कला की शिक्षा विस्तृत रूप से दी गई। स्पष्टतः समाज अथवा राष्ट्र की समृद्धता इसकी संस्कृति से भी ज्ञात होती है।13जैनागमों में चित्र कला– कौशल के विकास के लिए भी शोभासहित समस्त कलाओं से युक्त चित्रकला सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त है29मात्र इतना ही नहीं, प्रत्युत् लोक का उपकार करने वाले तथा राष्ट्र को विकास के मार्ग पर ले जाने के लिए वाले जिन कलाओं की आवश्यकता होती हैं उन सब से सम्बन्धित शिक्षा–शास्त्रों की विस्तार रूप से शिक्षा दी।14 जिनमें आयुर्वेद, धनुर्वेद, तन्त्र31 एवं रत्न परीक्षा आदि के शास्त्र सम्मिलित है15
वैदिक काल में भी आश्रमों एवं गुरुकलों में आचार्य विद्यार्थियों को मूल्यपरक शिक्षा प्रदान करते थे। वे जानते थे कि बाल्यावस्था से ही उनके शारीरिक एवं मानसिक विकास के साथ–साथ उनमें कर्त्तव्य–परायणता की भावना जागृत करके ही लोक–कल्याण की दिशा में प्रेरित किया जा सकता है। जैन–मान्यता है कि सत्य, अंहिसा, प्रेम, दया, परोपकार, विश्वकल्याण, विश्व–बन्धुत्व, धार्मिकता, विवेक, इन्द्रियसंयम, त्याग, धैर्य, अपरिग्रह आदि नैतिक मूल्यों को भी लौकिक शिक्षा के साथ–साथ आत्मसात् करना आवश्यक है तभी किसी परिवार, समाज, देश का बहुमुखी विकास सम्भव है।प्रत्येक मानव में चारित्रिक विकास का पर्याप्त अवसर है। मात्र उसे उचित दिशा प्राप्त होनी चाहिए। यही कारण है कि जैन वाड्.मय में चरित्र को उज्ज्वल करने वाले प्रेरक भावों एवं विकार अनेक स्थानों पर प्राप्त होते हैं।

जैनाचार्यों के मत में सम्यक्त्व से ज्ञान अर्थात् सम्यग्ज्ञान, ज्ञान से पदार्थों की उपलब्धि और उससे सेव्य–असेव्य का परिज्ञान होता है। जो व्यक्ति इस ज्ञान को जानता है वह दुराचरण का त्याग कर व्रत संयमादि के संरक्षणरूप शील से विभूषित हो जाता है जिसके फलस्वरूप उसे इस लोक में अभ्युदय की प्राप्ति होती है, तत्पश्चात् निर्वाण अर्थात् शाश्वतिक मोक्ष सुख प्राप्त होता है।17 स्पष्टतः शिक्षा का अर्थ केवल वस्तुओं का विभिन्न विषयों का ज्ञान मात्र नहीं है। ज्ञान की अथवा शिक्षा की सार्थकता वस्तुओं के ज्ञान के साथ–साथ अनुपयोगी और उपयोगी का विश्लेषण करने में होती है। इससे अनुपयोगी को त्यागने तथा उपादेय को ग्रहण करने की दृष्टि का विकास होता है।

वर्तमान सन्दर्भ में हमें अपनी लौकिक एवं नैतिक शिक्षा पद्वति को आधुनिक शिक्षा पद्वति के साथ स्वीकार करना होगा, क्योंकि दोनों में सामंजस्य स्थापित करने पर ही कोई भी राष्ट्र,

Vol. 10 No. 1-2, March-Sep. 2019
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903
Impact Factor 3.765

समाज मानवीय मूल्यों, एवं कला–कौशल सहित उन्नति को प्राप्त कर सकता है तथा सभी क्षेत्रों में प्रगति के मार्ग पर चल सकता है।भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि में उच्चस्तरीय शिक्षा की ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिससे भारतीय नवयुवक चरित्रवान हों, उन्हें भारतीय संस्कृति का ज्ञान हो और वे आधुनिक विधाओं का ज्ञान प्राप्त कर के देश की समृद्विमें समुचित योगदान कर सकें। इन्हीं उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य स्वयं को ऐसी बड़ी समष्टि इकाई माने उसके हित के लिए जीवित रहे, कुशलता से कार्य करे और लोक कल्याण को अपना पुरुषार्थ माने।

इस प्रकार शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् युवावस्था में आजीविका अर्जित करने के लिए व्यक्ति को कार्य करने के कौशल ज्ञान का प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। इन सामाजिक प्रावधानों में ढला प्रत्येक व्यक्ति षोडश संस्कारों से संस्कारित होता हुआ शनैः–शनैः अपने समाज एवं देश के लिए चरम उपयोगी संसाधन सिद्ध होता है। जिस प्रकार बीज के बिना अंकुर उत्पन्न नहीं होता उसी प्रकार पुण्य किए बिना सुख नहीं मिलता।18अतः जीवन–धर्म एवं नैतिक मूल्यों की व्यावहारिक शिक्षा तथा इन्द्रिय–संयम, सत्यभाषण, लोभ–त्याग भी आवश्यक है।अन्ततः मात्र सभ्य जीवन जीने के लिए ही नहीं अपितु कुशलता से कार्य करके जीवन को एक सही दिशा प्रदान करने के लिए भी जैन–आम्नाय की शिक्षा एवं सिद्वान्त महत्त्वपूर्ण हैं। सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन एवं सम्यक्–चारित्र के द्वारा मनुष्य ज्ञान, विवेक, सुख की प्राप्ति करता है। जैन आम्नाय के शिक्षा परक मूल्य मुख्यतः तीन दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं; वैयक्ति चरित्र (आचरण), सामाजिक चेतना एवं दार्शनिक विचारधारा, जो राष्ट्र को विकसित मार्ग पर अग्रसर करते हैं।

वर्तमान काल में मानव आर्थिक एवं समाजिक रूप से समृद्ध होने पर भी खिन्न है। इसीलिए लौकिक एवं नैतिक शिक्षा को आध्यत्मिक शिक्षा के साथ जोड़ कर मनुष्य को इस आधिभौतिक संसार में जीवन – यापन करना चाहिए। जब मानव अपने मन, मस्तिष्क, हृदय एवं इन्द्रियों को निर्मल करता है तभी वह अपने विषय में, अपनी शक्ति के विषय में एवं अपनी कला के कौशल के विषय में विचार करता है। तब समय– समय पर उपस्थित होने वाले संकटों को दूर करने के लिए अपने इस ज्ञान के द्वारा राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि अन्य विषयों पर सटीक निर्णय लेकर देश के सर्वांगीण विकास में मौलिक योगदान देता है।

सन्दर्भ सूची

1 पाणिनीय शिक्षा 41.42 छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ज्योतिषामयनं चक्षुः निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।।
2. यजु0 40.14: विद्ययाऽमृतभश्नुते।
3. आदिपुराण, 16.72: मानो व्यापारयामास कलाविद्योपदेशने।
4 वही, 16.97: इदं वपुर्वयश्चेदमिदं शीलमनीदृशम्। विद्यया चेद्विभूष्यते सफलं जन्म वामिदम्।।
5 वही, 16.98: विद्यावान पुरूषो लोके संमतिं याति कोविदैः। नारी च तद्वती धत्ते स्त्रीसृष्टेरग्रिमं पदम्।।
6. वही, 16.99: विद्या यशस्करी पुंसां विद्या श्रेयस्करी मता।
7. वही, 16.99: सम्यगाराधिता विद्यादेवता कामदायिनी।
8. वही, 16.100: विद्या कामदुहा धेनुर्विद्या चिन्तामणिर्नृणाम्। त्रिवर्गफलितां सूते विद्या संपत्परम्पराम्

Vol. 10 No. 1-2, March-Sep. 2019
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903
Impact Factor 3.765

9. वही, 16.101: विद्या बन्धुश्च मित्रं च विद्या कल्याणकारकम्। सहयामि धनं विद्या विद्या सर्वार्थसाधनी।।
10. वही, 16.118: पुत्राणां च यथाम्नायं विनया दानपूर्वकम्। शास्त्राणि व्याजहारैवम नुपूर्व्या जगद्गुरू।।
11 वही, 16.119:
12 वही, 16.120:
13 वही, 16.120: गन्धर्वशास्त्रमाचरुसयौ यत्राध्यायाः परशतम्।।
14 वही, 16.122: विश्वकर्ममतं चास्यै वास्तुविद्यामुपादिशत्। अध्यायविस्तरस्तत्र बहुभेदोऽवाधारितः
15 वही, 16.121: अनन्तविजयायाख्यद् विद्यां चित्रकलाश्रिताम्। ननाध्यायशताकीर्णा साकलाः सकलाः कलाः।।
16 वही, 16.125 शास्त्रं लोकोपकारि यत्। तत्सर्वमादिकर्त्तासौ स्वाः समन्वशिषत् प्रजाः।।
17 वही, 16.123: आयुर्वेद धनुर्वेदं तन्त्रं चाश्वेभगोचरम्:
18 वही, 16.124: रत्नपरीक्षां च बाहुबल्याख्यसूनवे।।

ग्रन्थ सूची

- आचार्य जिनसेन, आदिपुराण (प्रथम एवं द्वितीय भाग), हिन्दी अनुवाद प्रस्तावना तथा परिशिष्ट आदि सहित, अनुवाद–डॉ0 पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य भारतीय ज्ञानपीठ, 16 वॉ संस्करण, नई दिल्ली–110003, मूर्ति देवी जैन ग्रन्थमाला, संस्कृत ग्रन्थांक–8, ISBN.81.263.0853.2
- आचार्यमजिनसेन, हरिवंशपुराण, अनुवादक–डॉ0 पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, हिन्दी अनुवाद प्रस्तावना तथा परिशिष्ट सहित, भारतीय ज्ञानपीठ, 5 वां संस्करण, 1999, ज्ञानपीठ मूर्ति जैन ग्रन्थमाला, संस्कृत ग्रन्थांक–27, ISBN 81.263.0144.9
- जिनेन्द्र वर्णी, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग–1,2,3,4, प्रकाशक–भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 12 वॉं संस्करण, मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला, संस्कृत ग्रन्थांक 38 ISBN 81.263.0923.7
- जैनधर्म का प्राचीन इतिहास, प्रथम भाग, बलभद्र जैन, प्रेरक–आचार्य श्री दे ाभूशण जी महाराज पिद्यालंकार, प्रकाशक–पं0 केशरी श्री चन्द्र, नया बाजार, दिल्ली, तीर्थंकरचरितावली, प्रथमावृत्ति..
- कातंत्र–व्याकरण, हिन्दी टीका–गणिनी आर्यिका ज्ञानमती, वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला, पुष्प न0 83.
- जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, डोशी, प्रकाशक– पार्श्वनाथ शोधपीठ, वाराणसी, 1989.